P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-III, ISSUE-II, November-2014
E: ISSN No. 2349-9443
Periodic Research

प्राचीन भारत में वर्ण व्यवस्था का एक ऐतिहासिक अध्ययन

हरीश कुमार
इतिहास विभाग
डॉ0 भीमराव अम्बेड्कर जन्म शताब्दी महाविद्यालय धनसारी,
अलीगढ।

सारांश

प्राचीन भारतीय समाज में जाति प्रथा की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों के दृष्टिकोण निम्नलिखित है– ओल्डन वर्ग एवं नीस फील्ड के अनुसार पैतृक व्यवसाय होने के कारण जातियों की उत्पत्ति हुई। सैनार्ट के अनुसार एक परिवार के व्यक्ति एक ही पूर्वज की पूजा करते थे तथा संस्कार के समय एक ही भोज में सम्मिलित होते थे। अतः उनकी अलग–अलग जातियॉ बन गयी। जबकि रिजले मानते हैं। [1] कि प्रजाति भोज और रंगभेद के कारण विभिन्न जातियों की उत्पत्ति हुई कुछ विद्वान यह भी मानते है कि विभिनन समूहों के धार्मिक सम्प्रदायों व धार्मिक क्रियाओं में अन्तर होने के कारण भी अनेक जातियॉ बनीं जैसे ऋग्वेदी, सामवेदी, यजुर्वेदी, सतनामी, विश्नोई, जोगी, गोसाई इत्यादि।

मुख्य शब्द : प्राचीन भारत में वर्ण व्यवस्था की स्थिति, वर्ण व्यवस्था का भारत के समाज पर प्रभाव, वर्ण व्यवस्था का ऐतिहासिक लाभ या हानि, भारत के सन्दर्भ में।

प्रस्तावना

इस जाति व्यवस्था ने सम्पूर्ण भारतीय समाज को अनेक लघु इकाईयों में बांटने का कार्य किया। ऋग्वैदिक काल के उपरान्त जाति प्रथा निरन्तर सुदृढ़ होती गयी।[2] चार वर्णों के अन्तर्गत अनेक जातियों का विकास हुआ सूत्र ग्रन्थों के काल में वर्ण जातियों में परिवर्तित होने लगे। वर्ण का निर्धारण जन्म के आधार पर किया जाने लगा। सूत्र ग्रन्थों में ब्राह्मण को सर्वश्रेष्ठ वर्ण माना गया। द्विजातियों में उपनयन संस्कार (शिक्षा देने) की प्रथा थी जबकि शूद्रों का उपनयन संस्कार नहीं होता था। बौधायन सूत्रों में सभी नवीन जातियों की उत्पत्ति संकर जातियों से बताई गई। जैसे– शूद्र पिता व ब्राह्मणी माता की सन्तान को चाण्डाल, वैश्य पिता व बौद्धमाता की संतान को रथकार कहा जाता था। महाकाव्य काल में चार मुख्य जातियों के अतिरिक्त कुछ अन्य जातियॉ भी बन गयीं। विभिन्न जातियों में अन्तर्विवाह होने लगे। किन्तु कुछ नियम थे जैसे कोई पुरूष अपनी जाति से ऊॅची जाति की स्त्री से विवाह नहीं कर सकता था। इसके विपरीत कोई भी पुरूष अपनी जाति की या अपनी जाति से नीची जाति की स्त्री से विवाह कर सकता था। [3]बाद में सम जाति में विवाह को ही मान्यता दी गयी थी। किन्तु ब्राह्मण किसी भी वर्ण की कन्या से विवाह कर सकता था। स्मृति काल में जाति प्रथा का और अधिक विस्तार हुआ। ''स्मृतियों में समाज के दो भाग मिलते हैं– आर्य व अनार्य, इनमें से अनार्य घुमक्कण तथा विस्थापित जीवन बिताते थे तथा शमशान भूमि के पास वनों में रहते थे। [4]अनार्यों को रात्रिकाल में गॉव में आने की अनुमति नहीं थी। दिन में प्रवेश के दौरान इन्हें विशेष प्रकार के वस्त्र पहनने पड़ते थे। वह अपराधियों को फॉसी लगाने और शव उठाने का कार्य करते थे। मनु के अनुसार ब्राह्मण ब्रह्म विद्या में पारंगत होते थे। व्रतों का पालन करते थे। [5]ब्राह्मण ऐसे लोगों का भोजन ग्रहण नहीं करते थे जो श्राद्ध नहीं करते थे। मनु आगे कहते हैं कि यदि बाह्मण अपराध करें तो उसे दण्डित तो किया जाये किन्तु मृत्युदण्ड न दिया जाये। यदि कोई ब्राह्मण किसी शूद्र की हत्या कर दे तो उसे वही प्रायश्चित करना होता था तो उसे कुत्ता बिल्ली के मारने पर करना होता था। यदि हम सम्पूर्ण विश्व की संस्कृति का अवलोकन करें तो हम पाते हैं कि वर्गविहीन अथवा अस्वीकृत समाज कहीं भी नही मिलेगा। प्रत्येक स्थान पर जहॉ लोग एक साथ रहते हैं, एक सामाजिक संगठन विकसित होता है, जिसमें कुछ लोग विशेष सुविधाजनक स्थिति बना लेते हैं। परिणामस्वरूप वे दूसरों पर प्रभाव डालते हैं। [6]आज्ञा पालन और आशानुपालन ऐसा प्रत्येक समाज में पाया जाता है। एक वर्ग वह होता है जिसे अधिकारी का स्थान प्राप्त होता है और दूसरा वर्ग वह होता है

जो उसके आदेशों का पालन करता है, भारत में भी यह समाज व्यवस्था है।' जातिभेद भारत के सामाजिक संगम की एक अनुपम विशेषता है। इस प्रकार का जातिभेद किसी अन्य देश में नही पाया जाता। प्राचीन समय में इनका चाहे जो भी उपयोग रहा हो, किन्तु चिरकाल से यह भारत की उन्नति में बाधक है। सिन्धु घाटी की सभ्यता के समय से ही भारतीय सामाजिक संरचना का विभिन्न जटिलताओं में विकास होता रहा है। कतिप्रय विद्वानों के अनुसार हड़प्पा सभ्यता के समय से ही जाति प्रथा का आधारभूत एवं मूलस्वरूप विकसित होना प्रारम्भ हो गया था। [7]ऐसा प्रतीत होता है कि पदानुक्रम प्रतिष्ठा एवं शक्ति तथा शुद्धता और प्रदूषण के आधार पर ऐसी सामाजिक संरचना संगठित हुई जिसमें संस्थागत असमानता थी। समाज को बनाये रखने के लिए विभिन्न व्यावसायिक समुदायों के उनके स्तर पर सुरक्षित रखना आवश्यक था।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रारम्भिक आर्य सभ्यता के काल में वर्णव्यवस्था उत्तरोत्तर जटिल एवं कठोर होती गई। [8] वेदिक काल में ब्राह्मण परम्पराओं तथा धार्मिक अनुष्ठानों व कर्मकाण्डों के कारण विभिन्न धार्मिक परम्पराओं का विकास हुआ था। मगर ईसा से पांच–छह शताब्दी पूर्व उत्तर–पूर्वी भारत में धार्मिक विश्वास एवं दर्शन के दो महान मत प्रचलित हुए जो कालान्तर में जैन धर्म एवं बौद्ध धर्म के रूप में प्रसिद्ध हुऐ। उस समय उत्तरी भारत में ऋग्वेद काल से ही एक महत्वपूर्ण तथा सुस्थापित धर्म एवं दर्शन का वैदिक स्वरूप जिसे ''ब्राह्मण धर्म'' की संज्ञा दी जाती है, जो निरन्तर प्रगति कर रहा था। [9]परन्तु गौतम बुद्ध एवं वर्धमान महावीर के युग में उत्तर–पूर्वी भारत का बहुत बड़ा भू–भाग ब्राह्मण धर्म के प्रभाव से मुक्त था। ब्राह्मण धर्म का वैदिक स्वरूप कोई सर्वव्यापी नहीं था। यह मत एवं धर्म सिद्धान्त न तो सभी व्यक्तियों में स्वीकार थे और न इसके द्वार सभी स्त्री–पुरूषों के लिए खुले थे, यहॉ तक कि उपनिषद के मत व सिद्धान्त भी केवल उन्हीं लोगों के लिए थे जो पूर्व में इस धर्म में दीक्षित हो चुके थे।[10] बलि–यज्ञों की पूजा पद्धति के ज्ञान पर केवल ब्राह्मणों के पुरोहित वर्ग का ही एकमात्र अधिसत्य था जो न केवल पावन बल्कि गोपनीय भी था। यह ज्ञान सामान्यतः क्षत्रिय, वैश्य और शुद्रों को नही दिया जाता था। पारम्परिक ब्राह्मणवादी समाज में दीक्षा उपलब्ध तो थी मगर सभी लोगो को दीक्षा प्रदान नहीं की जा सकती थी। इस प्रकार ब्राह्मण लोग अपनी पवित्र परम्परा में किसी अन्य व्यक्तियों को धर्मान्तरित नहीं कर सकते थे। पारम्परिक ब्राह्मणवादी हिन्दू धर्म में एक कठिनाई और विद्यमान थी जो धर्मान्तरण एवं सर्वव्यापकता में बाधक थी। प्रत्येक वर्ण के सदस्यों के लिए कर्त्तव्यों, अधिकारों एवं विशेषाधिकारों की एक अपरिवर्तनीय सूची होने के कारण चार वर्णों की वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत दूसरें धर्म के अनुयायियों को हिन्दू धर्म में धर्मान्तरण के लिए कोई स्थान नही था। [11]प्रत्येक व्यक्ति को जन्म से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य होना निश्चित था। इसके बाद भी वर्ण व्यवस्था का पतन होते–होते वह जातिसूचक व्यवस्था में परिवर्तित हो गई तो सामाजिक, धर्मिक व्यवस्था और भी अधिक कठोर हो गई तथा कट्टर ब्राह्मणवाद के द्वार उन सभी लोगों के लिए बंद हो गये जो वर्ण व्यवस्था के बाहर थे।

प्राचीनकाल से वर्तमान समय तक जाति प्रथा भारतीय सामाजिक संरचना की आधारशिला रही है।[12] अधिकांश प्रजातंत्रात्मक देशों में वर्ग–भेद का आधार जन्म, सम्पत्ति, व्यवसाय अथवा व्यक्ति से संबंधित कोई दूसरी कसौटी होती है जबकि भारत में वर्ग भेद का आधार धर्म है। अधिकांश देशों में सामाजिक स्तर विन्यास में काफी सीमा तक सरलता पायी जाती है एवं अपने स्तर अथवा धन के कारण प्रत्येक व्यक्ति को समाज में ऊंचा उठने का अवसर उपलब्ध रहता है मगर भारत में ऐसा नहीं है। किसी भी जाति विशेष में उत्पन्न हुए व्यक्ति को अन्य सभी सोच समझकर एवं लिहाज के बावजूद भी जीवनभर उसी जाति में रहना पड़ता है।[13]यद्यपि किसी व्यक्ति के व्यवसाय और समाज में उसके स्थान के बीच एक निश्चित संबंध होता है तथापि हिन्दू धर्म में जाति द्वारा न केवल उस व्यक्ति का व्यवसाय निर्धारित होता था बल्कि जन्म से लेकर मृत्यु तक उसके अधिकांश कार्यों का निर्धारण भी होता था। एक प्रमुख समाजशास्त्री जी0एस0धुर्ये के अनुसार संस्था के रूप में जाति धार्मिक नियमों एवं नीति वचनों तथा निषेधों का पुलिन्दा यह तथ्य उल्लेखनीय है कि धर्म– शास्त्रों में दूसरे धर्मानुयायियों को ब्राह्मणवादी हिन्दू धर्म में धर्मान्तरित करने के लिए किन्हीं धार्मिक अनुष्ठानों एवं धार्मिक कृत्यों का कोई वर्णन नहीं पाया जाता है मगर इसका अर्थ यह नहीं कि उस समय आर्यों की पद्धति में सांस्कृतिक समावेश नहीं होता था।[14] यह सुनिश्चित है कि प्राचीनकाल में बहुत से विदेशी कबीले भारत आये और उन्हें शीघ्र ही स्थानीय निवासियों ने अपने समाज में समाविष्ट कर लिया। इनमें से कुछ विदेशी समुदायों ने भारत में अपने सुद्धढ़ राजवंश भी स्थापित कर लिये। यूनानियों, हूणों, शकों, और कुषाणों ने शक्ति के बल पर क्षत्रिय का स्थान प्राप्त कर लिया क्योंकि वे उन भू–भागों के शासक बन गए जहां पर ब्राह्मण पुरोहितों ने क्षत्रियों के रूप में धर्मान्तरित नहीं किया था तथापि उन्होंने स्वयं ही ब्राह्मणवाद की धार्मिक सामाजिक रीतियों को अपना लिया और इस प्रकार वे ब्राह्मणवाद अथवा हिन्दू धर्म के अनुयायी बन गये।[15] सभी विद्वान इस बात को मानते हैं कि प्राचीन हिन्दू समाज की पाचन शक्ति इतनी तीव्र थी कि यूनानी, शक, हूण आदि प्रारम्भिक आक्रमणकारियों का उसने पूर्ण रूप से अपने में विलयन कर लिया। बौद्ध एवं जैन धर्म में हिन्दूओं का धर्मान्तरण तकनीकी अर्थ में धर्मान्तरण नहीं किया था। यह उल्लेखनीय है कि हिन्दू धार्मिक दर्शन एवं जीवन में इन दोनों धर्मों के मतों, विचारों एवं सिद्धान्तों को पूर्णतः आत्मसात कर लिया गया था।[16] इस प्रक्रिया के कारण भारतीय समाज के संदर्भ में धर्मान्तरण की प्रांसगिकता ही समाप्त हो गयी। तथापि इन धर्मों के उद्भव एवं विकास के कारण भारतीय समाज में ब्राह्मणवादी धार्मिक अनुष्ठानों और कर्मकाण्डों का प्रभाव कम हो गया। बौद्ध धर्म के पतन के साथ मुस्लिम शासनकाल में धर्मान्तरण आन्दोलन ने एक नयी दिशा ग्रहण कर ली भारत में मुस्लिम शासन के आगमन के साथ एक विशिष्ट प्रकार के नये धर्म का आगमन हुआ जिसका प्रचार प्रसार तत्कालीन शासक वर्ग के संरक्षण एवं प्रलोभन के कारण बड़े उत्साह से किया जाने लगा

P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-III, ISSUE-II, November-2014
E: ISSN No. 2349-9443
Periodic Research

हिन्दुओं का धर्मान्तरण करने के लिए मुसलमानों ने समझाने– बुझाने तथा अन्य प्रलोभन के साथ–साथ शक्ति का प्रयोग किया।[17] मुसलमानों के शासनकाल में उच्च पदों के प्रलोभन तथा जागीरदारी प्राप्त करने के कारण बहुत से उच्च जाति के हिन्दुओं ने भी इस्लाम धर्म को अपना लिया हिन्दू परम्परा एवं इस्लामी दुनिया के बीच उत्पन्न हुए इस सांस्कृतिक सम्पर्क के कारण एक ऐसी ऐतिहासिक स्थिति पैदा हो गई थी जो स्वभाव एवं स्वरूप में उन्नीसवीं शताब्दी के समान थी।[18] वर्ण व्यवस्था और जाति भेद सामान्यतः एक जैसे ही दिखाई पड़ते हैं किन्तु इन दोनों में पर्याप्त असमान्ताऐं है। कई लोगों का विश्वास है कि वर्ण और जाति एक ही वस्तु है सामान्यतया सा ही दिखाई पड़ने पर उनकी व्युत्पत्ति एवं स्वरूप में कुछ अन्तर है। जाति का संबंध जात अथवा जन्म से है और वर्ण का संबंध वर्णी वरीतुमही से है, अर्थात जो वरणी अथवा वरण करने योग्य है।[19] जाति देवधि न होती है, उसमें परिवर्तन असम्भव है 'दैवायंत कुले जन्म मदायतम तु पौकषम किन्तु वर्णी को चुना जा सकता है और आवश्यकता होने पर उसमें परिवर्तन भी किया जा सकता है। डा0 मजूमदार के अनुसार,''जाति प्रथा केवल एक विश्रंखलित सामाजिक संस्था है जो अपनी सेवाओं के पश्चात् भारत के वातावरण को दुर्गन्ध से भर देती है। कोई भी जाति उन अर्थों में नहीं बनी जिन अर्थों में ब्राह्मण द्वारा उसकी व्याख्या की गई है और जो हिन्दू व्यवस्था ने थोप रखी हैं जाति तो मूलतः भूलवंश, समूह से अनिप्रेरित है आदि काल से लोग समूहों में रहते थे। यह समूह एक खास पहचान से आपस में संगठित होते थे। ये समूह किसी वृक्ष या किसी जीवन जन्तु को अपना जाति टोटममान लेते थे। भिन्न–भिन्न समूह भले ही उनका जाति टोटम एक हो लेकिन कुछ देवों, विश्वासों, परम्पराओं, रीति–रिवाजों के आधार पर वह एक दूसरे से पृथक थे।[20] ये तो जातियों के जाति चिन्ह आज भी हमें उपलब्ध होते हैं ये वही आदिकालीन टोटम हैं। भिन्न–भिन्न समूहों के लोग एक धर्म को अंगिकार नहीं। धर्म का सम्बन्ध आस्था–विश्वास है जबकि जाति का सम्बन्ध आदिम पहचान से है, वे समूह ही आदिकाल से जातियों के नाम से संगठित रहे हैं।[21]

निष्कर्ष

''जाति और वर्ण में पर्याप्त अन्तर है। भारतीय समाज में जब से पृथक समूहों का निर्धारण हुआ उसी समय से वर्ण की अवधारणा ने जन्म लिया। प्रारम्भ में वर्ण मनुष्य के कर्म तथा गुणों के अनुसार निर्धारित होते थे किन्तु धीरे–धीरे कर्म तथा गुणों का स्थान जन्म ने ले लिया। जिस वर्ण में मनुष्य का जन्म होता था वह उसी वर्ण के नाम से आनुवांशिक पहचान बनी रहती है। चाहे उसके कर्म तथा गुण उस वर्ण के अनुरूप हों या न हों। वर्ण व्यवस्था की इस परिवर्तित स्थिति ने जाति प्रथा को स्वरूप प्रदान किया।[22] आधुनिक भारत में जाति प्रथा भारतीय समाज के लिए कलंक बन गयी है क्योंकि स्वतंत्र एवं लोकतांत्रिक भारतीय व्यवस्था में भले ही प्रत्येक क्षेत्र में समानता की सिर्फ बात की गयी है किन्तु जो जाति सहस्राब्दियों से शासित रही वह हमेशा समानता विरोधी रही हैं वे हमेशा व्यक्ति के गुणों की बात न करके जाति के गुणों की बात करती हैं और जाति प्राचीन काल से दबी, कुचली एवं शोषण का शिकार होती चली आ रही थी। उन्हें उसी हाल में रहने एवं रखने की वकालत करती है। समानता की बात उसके गले से आज भी नीचे नहीं उतरती है, वे हमेशा शासक वर्ग बने रहना चाहती है।[23] यह जाति या वर्ग स्वयं को बुद्धिजीवी वर्ग कहलाने में स्वयं ही गर्व महसूस करती है। जबकि डा0 अम्बेडकर के अनुसार,''बुद्धिजीवी वर्ग वह है जो दूरदर्शी होता है, सलाह दे सकता है और नेतृत्व दान कर सकता है। किसी भी देश की अधिकांश जनता विचारशील एवं क्रियाशील जीवन व्यतीत नहीं करती।[24] ऐसे लोग प्रायः बुद्धिजीवी वर्ग का अनुकरण व अनुगमन करते हैं। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नही होगी कि किसी देश का सम्पूर्ण भविष्य उसके बुद्धिजीवी वर्ग पर निर्भर करता है कि संकट की घड़ी में वह पहल करेगा और उचित नेतृत्व प्रदान करेगा।[25] यह ठीक है कि प्रज्ञा अपने आप में कोई गुण नहीं है। यह केवल साधन है और साधन का प्रयोग उस लक्ष्य पर निर्भर है जिसे एक बुद्धिमान व्यक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न कर सकता है। भारत से यह वर्ण व्यवस्था खत्म होनी चाहिये थी जो वर्ण व्यवस्था एक धर्म के लोगों में असमानता पैदा करती है हमारे प्राचीन ग्रन्थों में एकता की बाते सिर्फ धार्मिक जातियों की संख्या बढ़ाने के लिये की गई है जबकि एक राष्ट्र के लिऐ धर्म तो भिन्न हो सकते हैं परन्तु प्रत्येक धर्म की सिर्फ एक ही जाति होनी चाहिये है। इसी से राष्ट्र विकास व सामाजिक समृद्धि में आगे भड़ते हैं और चहुमुखी उन्नति होती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 कृष्णदत्त त्रिवेदीः– भारतीय पुनर्जागरण और मदनमोहन मालवीय, प्रथम संस्करण पृ0– 76 व 77
2. ए0एल0बॉसमः– अद्भुत भारत, संशोधित हिन्दी, पृ0– 96–97
3. रोमिला थापरः– प्राचीन भारत का इतिहास, पृ0– 28
4. डॉ0 मजूमदार राय चौधरी दत्ताः– भारत का वृहद् इतिहास प्राचीन भारत, भाग–1 पृ.68–75
5. उपनिषद का अर्थ है– 'समीप में बैठकर कहने योग्य सिद्धान्त या रहस्य ग्रन्थ। उपनिषद शब्द उपकारी–सद धातु से निकला है, जिसका अर्थ है 'किसी के निकट बैठना। जिनमें वेद का रहस्य ज्ञान तथा दार्शनिक ढंग की गम्भीर विवेचना है।
6. मजूमदार राय चौधरी दत्ताः–भारत का वृहद इतिहास, भाग–1 पृ–44
7. वही पृ0 68
8. मुशीराम जिज्ञासु एवं रामदेवः– द आर्य समाज एण्ड इट्स डिट्रेक्टर्स ए विन्डिकेशन, पृ0– 113
9. रिचार्ड लेवॉयः– द स्पीकिंग ट्री ए स्टडी ऑफ इण्डियन कल्चर एण्ड सोसायटी, पृ0–142
10. राधाकुमुद मुखर्जीः– प्राचीन भारतीय संस्कृति, पृ0–75
11. वही पृ0–140–141
12. जी0एन0धुर्येः– कास्ट एण्ड रेस इन इण्डिया, पृ02–7
13. रिचार्ड लेवॉयः– द स्पीकिंग ट्री ए स्टडी ऑफ इण्डियन कल्चर एण्ड सोसायटी, पृ0–177–178
14. डॉ0ए0एल श्रीवास्तवः– भारत का मध्यकालीन इतिहास (1000–1707) पृ0288

15. मजूमदार राय चौधरी दत्ताः– भारत का वृहद इतिहास, भाग–1 पृ070–71,73–74
16. विश्व प्रकाशः– लाइफ एण्ड टीचिंग ऑफ स्वामी दयानन्द, पृ0157
17. केनेथ डब्ल्यू जोनसः– आर्य धर्म, हिन्दू कॉन्शसनेस इन नाइन्टीन्थ सेंचुरी, पृ02
18. डॉ0रामप्रकाश आर्यः– महर्षि दयानन्द सरस्वती (जीवन व हिन्दी रचनाऐं), पृ0208
19. डॉ0 राजकिशोर सिंहः– भारतीय संस्कृतिक (चतुर्थ संसोधित एवं परिवहित संस्करण) प्रकाशक विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, पृ016–26
20. भगवत शरण उपाध्यायः– गुप्तकाल सांस्कृतिक इतिहास, प्रकाशक हिन्दी समिति सूचना विभाग यू0पी0लखनऊ वर्ष 1969, पृ05–6
21. दामदत्त मिश्रः– प्राचीन भारतीय संस्कृतिक, प्रकाशक अनुराग प्रकाशन 131, संत रविदास मार्ग पुराना बैरहना, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1984, पृ0 33–38
22. डॉ0 हेमचन्द्र राय चौधरीः– प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास, प्रकाशक किताब महल इलाहाबाद वर्ष 1971 पृ013–17
23. रामजी उपाध्यायः– प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, प्रकाशक देव भारती प्रकाशन व लोक भारती साहित्य इलाहाबाद वर्ष 1966 पृ0 27–29
24. डा0 शरद सिंहः– प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास पृ0 67
25. डा0 शरद सिंहः– प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास पृ0 66